दिव्य शक्ति बोध
तथा
साधक-उद्‌बोधन
सत्संग भजनावली

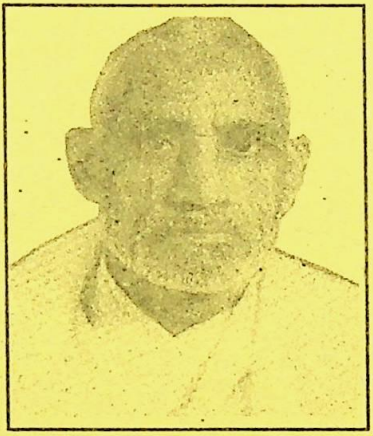

लेखक- महात्मा श्री नारायणदास जी

प्रकाशक-
नारायण आध्यात्मिक ट्रष्ट
सरकुलर रोड, शिवपुरी

संस्करण
गुरुपूर्णिमा 2017

मूल्य- 10 रु.

सत्संग की महिमा

सब कर फल हरि भगति सुहाई।
सो बिनु संत न काहूँ पाई।

अस बिचारि जोइ कर सतसंगा।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा।।

"रामचरित मानस"

गुरू पूर्णिमा
सन् 2017

नारायणदास

अुनक्रमाणिका

1-2- पूर्व वाचन
3- साधक उद्‌बोधक
4-5- अथ द्वादशोऽध्याय
6- गुरू महिमा
7- दिव्य शक्ति महिमा
8- दृष्टा
9- सत्य की प्रतीति
10- विचारों की महानता
11- सफल अभ्यास
12- प्रभू प्रीति
13- भव भेषज़
14- साधना में प्रगति
15- आत्म तत्व की व्यापकता
16- निष्कपट व्यवहार
17- सत्य पथ
18- राम सदन
19- भजन- हे नाथ अबतो ऐसी दया हो
20- भजन- जीवन का मैंने सोंप दिया
21- भजन- फिर मत कहना कुछ कर न सके
22- सत्संग- के अन्त में कहने को -

गुरू पूर्णिमा ॐ राम् - नारायणदास
9.07.2017 रविवार

पूर्व वाचन

आत्म प्रिय पाठको,

प्रत्येक साधना की प्रगति में तत्सम् वातावरण अनिवार्य है। इस दृष्टि से प्रेरक से सम्पर्क जितना अधिक रहे उतना ही श्रेयस्कर है। देहधारी प्रेरक की सतत सन्निधि प्रायः असम्भव ही है। हाँ, उसके विचार यदि लिपिबद्ध उपलब्ध हो सकें तो उपरोक्त आवश्यकता की पूर्ति बहुत कुछ हो सकती है। अस्तु, दिव्य शक्ति बोध तथा सत्संग भजनावली की उपासना में सहायक विचारों को भजनों के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस भजनावली का दैनिक पाठ किया जाना अपेक्षित है। साथ ही उस पर मनन करना भी आवश्यक है। तदुपरान्त जीवन में उतारने से साधक सिद्ध हो सकता है।

इन भजनों का भाव संक्षेप में इस प्रकार हैं-

1. गुरू गरिमा-इसमें यह विचार धारा है जिसके सिद्ध होने पर साधक अपने आश्रित साधकों को हृदयांगम करा दे कि वस्तुतः दिव्यशक्ति ही गुरू है। उसी में पूर्ण श्रृद्धा रखनी चाहिये। दीक्षा देने वाला गुरु परम हितैषी अवश्य है। बाह्य पूजा की अपेक्षा उसके वचनों का आदर सर्वोपरि है।
2. दिव्य शक्ति महिमा- इसमें यह भाव है कि कुण्डलिनी दिव्य शक्ति है और यह ही वस्तुतः गुरू है, जो साधक के पास सदैव रहती है और उसे प्रतिक्षण मार्ग सुझाती है। अतएव इसी परम पूज्य जगदम्बा के आश्रित सदैव साधक को रहना चाहिये।
3. दृष्टा- इसमें यह भाव है कि साधक सदैव दृष्टा बनकर रहे और प्रकृति को कार्य करने दे। इस प्रणाली से उसकी मानसिक स्थिति जीवनमुक्त सदृश हो जावेगी। साथ ही उसके दैनिक कार्य भी उत्तमता से होंगे।
4. सत्य की प्रतीति- इसमें यह भाव है कि प्रभुसत्ता सबके अंदर है। यह सत्ता साधना ले लेने पर ही प्रत्यक्ष अनुभव में आती है। इस सत्ता का अनुभव तभी होता है जबकि साधक दृष्टावत् हो जावे और अपनी ओर से जानबूझ कर कोई प्रयत्न न करे।

5. विचारों की महानता- इसमें यह भाव व्यक्त हुआ है कि सब कार्य विचारों से होते हैं।विचारों की ही प्रबलता प्रमुख है। अस्तु विचार ही शक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं।
6. सफल अभ्यास- इसमें यह विचारधारा है कि साधक अपने को ऊपर से ''मैं'' सम्बोधन कर काम कर सकता है पर मन में यही समझे कि भगवती जगदम्बा दिव्यशक्ति ही काम कर रही है। इसके अभ्यास से ही साधक सिद्ध होता है।
7. प्रभु प्रीति- इसमें यह भाव है कि दिव्यशक्ति ही साधक को परमात्मसत्ता के प्रति उत्तरोत्तर अनुराग वृद्धि कराने में सहायक है। अपने को प्रकृति से परे समझना वह क्रिया है जिससे साधक, परमात्मसत्ता के सदृश आचरण करने लगता है। इस आचरण से ही उत्तरोत्तर प्रभु चरणों में प्रेम बढ़ता है।
8. भव भेषज- इसमें यह भाव है कि संसार की बाधाओं से साधक, साधना द्वारा मुक्त हो सकता है यानी दुःख-सुख से ऊपर उठ सकता है। यह वैसी ही पद्धति है जैसी कि भरत जी ने अपनाई थी। फलतः उनका शासन सर्वथा दोष रहित रह सका।
9. साधना में प्रगति- इसमें साधक की साधना में प्रगति के भाव व्यक्त किये गये हैं ।
10. आत्म तत्व की व्यापकता-इसमें ये भाव व्यक्त किये गये हैं कि प्रत्येक प्राणी के अन्दर आत्म तत्व है। इसकी अनुभूति, साधना में सहज ही हो जाती है।
11. निष्कपट व्यवहार- इसमें यही भाव है कि छल रहित व्यक्ति ही शक्ति का अनुभव कर सकता है।
12. सत्य पथ- इसमें यही भाव है कि परमात्मसत्ता सत्य है। साधक को इसी सत्ता के साथ रहना चाहिये। सत्य के साथ रहने से साधक में वे सभी विशेषतायें स्वयं आ जाती हैं जो उससे अपेक्षित हैं।

अन्त में साधक-उद्बोधन की दृष्टि से सत्संग के आरम्भ में तथा अंत में कहे जाने वाले पद हैं।

ॐ शम्

साधक उद्‌बोधक

सत्संग के प्रारम्भ में कहने को –

जागा वातावरण हमारा, सृज रहा अभिषेक है।
भिन्न भिन्न हैं नाम हमारे, रूप हमारा एक है।। जागा.

मेरा तेरा कहना सुनना, केवल लोकाचार है।
सब के अंग मिलाकर देखो, बृहत् एक आकार है। जागा.

जग हित है निर्माण हमारा, प्रकृति का संसार है।
उसका ही समुदाय है सारा, भक्तों का परिवार है।। जागा.

निमित्त बनाया उसने हमको, मन्थन का यह सार है।
अज्ञान अंधेरा दूर हुआ है, सुख–दुख बेड़ा पार है।। जागा.

सुनना और समझना दोनों, जीवन का आधार है।
नित्य बर्तना तत्सम उसका, आशा का संचार है।। जागा.

हिल मिल कर सत्संग करें हम, सदाचार साकार है।
इधर उधर से हटा चित्त अब सुनने को तैयार है। जागा.

ॐ श्री परमात्मने नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।। १ ।।

श्री भगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।। २ ।।
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।। ३ ।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।। ४ ।।
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।। ५ ।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।। ६ ।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।। ७ ।।
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।। ८ ।।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।। ९ ।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।। १० ।।
अथैतदप्यसशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरू यतात्मवान्।। ११ ।।
श्रेया हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। १२ ।।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।। १३ ।।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। १४ ।।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।। १७ ।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। १६ ।।
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।। १७ ।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्ग.विवर्जितः।। १८ ।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। १९ ।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवदगीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग–
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।

गुरू गरिमा

परम हितैषी जानो उसको, जो जीवन ज्योति जगादे।
गौण बनाकर निज की सेवा, सम्मानित ज्योति करादे।। परम

घर की सीमा विस्तृत करके, जग से नाता जुड़वा दे।
'मै पन' का सब मोह मिटाकर, मेल सत्य से करवा दे।। परम

साफ साफ कहने की आदत, साधक में दृढ़ डलवा दे।
उपदेश ग्रहण कर अपनाने की, श्रद्धा उसमें जमवा दे।। परम

हो अभिमान लेश नहिं उसको, गुरू गद्दी पर बिठला दे।
सहज भाव छूटे नहिं चाहे, हार सुगंधित पहना दे।। परम

लोक दृष्टि से गुरू पूजा का, पूर्ण रहस्य समझा दे।
बनकर पथप्रदर्शक केवल, श्रद्धा माँ में बढ़वा दे।। परम

पुष्प आदि से गुरू पूजा को, मन्दिर पूजा बतला दे।
पालन नित गुरू वचनों को ही, पूजा गुरू की समझा दे। परम

दिव्य शक्ति महिमा

सत्य गुरू समझो उसको ही, जो प्रतिक्षण मार्ग सुझावे।
प्रतिक्षण साथ रहे जीवों के, माँ कुण्डलनी कहलावे।। सत्य

तन की रचना यही करे अरू, कर्म फलों को भुगतावे।
रक्षक बनकर रहती तन में, पर साफ नजर नहिं आवे।। सत्य

शुद्ध हृदय अरू सरल भाव से, जब जीव शरण में आवे।
करे अनुग्रह शरणागत पर, निज स्वरूप को दिखलावे।। सत्य

करा–करा कर नाना आसन, तन को पुष्ट बनावे।
बल अनुसार ही विविध क्रियायें, अरू प्राणायाम करावे।। सत्य

प्रथक हटाकर सब चिन्तायें, तन मन को शुद्ध बनावे।
करती काम शक्ति अनुभव हो, ' मैं पन' पास न आवे।। सत्य

जब देखो तब रहे उपस्थित, नित प्रेम के अश्रु बहावे।
जीवों के हित रहे सजग नित, शरणागत फिसल न पावे।। सत्य

दृष्टा

तज कर मन की सभी वासना,
दृष्टा बनना जो चाहे।
देर नहीं फिर उसको कुछ भी,
शक्ति उसे फिर अपनावे।। तज

औजार सदृश हैं सभी इंद्रियाँ,
निर्देशक पति कहलावे।
सेवक भाँति विचार तत्व जो,
उनसे कर्म करावे।। तज

शक्ति शरण जब ले निर्देशक,
तब वह दृष्टा हो जावे।
चारों के कामों को जाने,
वह पंचम तत्व कहावे।। तज

दृष्य बनेंगे ये ही पाँचों
तब निज रूप नजर आवे।
ये ही काम करें सब मिलकर,
अलग समझ में 'मैं' आवे।। तज

जब तक अनुभव हो न शक्ति का,
भेद नहीं यह खुल पावे।
नित्य–नित्य अनुभव करने से,
दृढ़ता मन में आ जावे ।। तज

जो भी काम करे साधक फिर,
शरणागत नहिं विसरावे।
उचित काम हो सभी प्रकृति से,
जीव मुक्त तब हो जावे।। तज

सत्य की प्रतीति

दिव्य शक्ति जब अनुभव होती,
तभी प्रतीति होती है।
प्रभु सत्ता है सचमुच अन्दर,
सत्य समझ में आती है।। दिव्य
जो कुछ करता काम जीव है,
वह सब सत्ता करती है।
प्रतिदिन की आदत जीवों में,
साक्ष्य भाव ला देती है।। दिव्य
बिन जाने सत्ता की निज की,
शकल अधूरी होती है।
शरणागत जो होता उसको,
झटपट ज्ञान कराती है ।। दिव्य
कुदरत अनुचित कभी न करती,
सदा ठीक वह करती है,
जीव चलाता जब तक अपनी,
मौन बनी वह रहती है।। दिव्य
अवसर देता जीव उसे जब,
अपने ढँग से करती है।
होता ढँग निराला उसका,
कभी भूल नहिं पड़ती है।। दिव्य
चतुराई से कर्म कराकर,
सदा सुखी वह रखती है।
सूझबूझ मेधा को देकर,
जीवन सफल बनाती है ।। दिव्य

विचारों की महानता

दिव्य शक्ति है जग की माता,
सभी शास्त्रों का मत है।
समझो उसको जीवन–दाता,
बस खेल विचारों का है।। दिव्य
दृढ़ता से यह भाव जमें जब,
मुझमें उसका रहना है।
ज्योंही सोचा प्रेम भाव से,
त्योंही उसका पाना है।। दिव्य
लहरों सा आकार मान कर,
कुण्डलनी नाम रखा है।
आधार विचार–तरंगो को,
जग की रचना माना है।। दिव्य
शब्दों की ध्वनि उठे जहां से,
मूलचक्र पहिचाना है।
टेढ़ी गति चलने से उसको,
सर्पाकार बताना है ।। दिव्य
उसका उठकर ऊपर आना,
ब्रह्मरन्ध्र तक जाना है।
इस सत्ता के आश्रित रहकर,
जीवन सुखी बिताना है।। दिव्य
कर्म क्षेत्र में उतरो पीछे,
पहले शक्ति जगाना है।
उत्तम कार्य तभी सब होंगे,
यही धर्म अपनाना है ।। दिव्य

सफल अभ्यास

जिस माता ने जन्म दिया है,
उसके प्रति यदि आदर हो।
प्रीति बढ़े नित आत्म बोध में,
अन्न वस्त्र की कमी न हो ।। जिस

रहे लगी लौ निशि दिन ऐसी,
उत्थान शक्ति का कब हो।
उत्थान तभी संभव है जब,
परम पूज्य जगदम्बा हो।। जिस

निज देह बने मन्दिर उसका,
अरू जीवन पूर्ण शरणागत हो।
होवें काम सभी सुन्दर यदि,
उनमें उसकी सम्मति हो।। जिस

सब कुछ करती है जगदम्बा,
उसको ऐसा अनुभव हो ।
अनुचित उससे कभी न होवे,
इस पर पूर्ण भरोसा हो ।। जिस

हाथ, पैर अरू नाक, कान सब,
काम करें अब उसके हो।
झूंठ–मूंठ को कहता 'मैं' 'मैं'
इसमें कुछ भी भ्रम न हो।। जिस

ऐसा कहना सहज बने जब,
अभ्यास सफल तब ही हो।
साधक सिद्ध हुआ जीते जी,
सबकी ऐसी सम्मति हो।। जिस

प्रभु प्रीति

झलक रहा है रूप आपका,
अद्भुत मेरी आँखों में।
करूँ अनुकरण नित्य आपका,
आप सरीखे जीवन में ।। झलक

मुक्त हुआ माया बन्धन से
बिछुड़ा अंश मिला फिर से।
लगी भासने प्रकृति मेरी,
करती काम प्रथक मुझसे।। झलक

व्यापार करें गुण ही गुण में,
सत् में सत अरू रज से रज में।
हुआ प्रभावित तम से तम है।
दिखें पलटते पल–पल में।। झलक

निर्द्वन्द्व हुआ विचरूं अब मैं
सुख–दुःख अरू रागादिक में।
माता–पुत्र पिता अरू पत्नी.
लगे भासने अपने से ।। झलक

मानव कीट पतंग आदि सब,
सने हुए हैं सत्ता में।
देती नहीं दिखायी सत्ता,
भासे केवल अनुभव में।। झलक

शरणागत से भाव यही है,
"मैं पन" बदले सत्ता से।
कर्त्ता तेरी अब सत्ता ही,
मुक्त हुआ तू कर्मों से ।। झलक

साक्षी रहकर क़र्म करे जो,
पड़े नहीं भव बन्धन में
सन्मुख वास करे स्वामी के,
प्रेम बढ़े प्रभु चरणों में।। झलक

भव भेषज

रख आदर्श भरत का तू अब,
यदि भव रोग मिटाना है ।
समझ राम के सभी काम तू,
अपनापन नहिं लाना है।। रख
तन मन धन से प्रेमी उसका,
प्रतिक्षण को बन जाना है।
दुख पर दुख आवें ही कितने,
दुख से भय नहिं खाना है।। रख
वास करे जो हर दम सब में,
उसमें ही रम जाना है।
सम्मुख रह कर शरण आपकी,
बदला तो दुख पाना है।। रख
अमित काल के अनुभव से ही,
सत्य रूप पहचाना है ।
घट घट में वह रहे एकसा,
ऋषि मुनियों ने जाना है।। रख
उसी तथ्य को कहा शम्भु ने,
हरि सर्वत्र समाना है।
अन्तःपुर है ठीक ठिकाना,
लौ से उसको पाना है।। रख
शुद्ध प्रेम को लौ कहते है।
अपने को अपनाना है।
तन के अंग बनाये जिसने,
स्वामी उसे बनाना है।। रख

साधना में प्रगति

नाथ आपकी सत्ता के बल,
होते काम जगत के सारे।
घट घट व्यापी अन्तर्यामी,
हो तुम ही आदर्श हमारे।। नाथ.
जाग्रत सुप्त सुषुप्ति में भी,
रहते नित्य उपस्थित तुम हो।
आनंद में नित डूबे रहते ;
स्वंय प्रकाशित सत्य तत्व हो।।नाथ.
बन्धन मुक्ति हुई है प्रकृति,
प्रेम भाव में डूबी तेरे।
रहती हरदम दिखती मुझको,
करती काम सभी कुछ मेरे।। नाथ.
नित्य नाचती सभी इन्द्रियाँ,
उठते हुये विचारों के बल।
देत शक्ति आदेश आपकी ,
नियम पालती निर्मल निश्चल।।नाथ.
होन लगा है दिन प्रतिदिन ही,
अहंकार भी निर्बल भगवन्।
बनकर साक्षी उठता दिखता ,
अब सुख दुःख से ऊपर 'मैं पन'।। नाथ.

आत्म तत्व की व्यापकता

जन जन के भीतर अरू बाहर,
रूप भासता आत्म तत्व का।
यही सत्य है अरू चेतन,
अरू यही नाम अविनाशी का।।
इसी तत्व के अनुभव से ही,
भेद खुले सब मानव का।
जननी है प्रकृति कामों की,
अरू धर्म जीव का दृष्टा का।।
क्रोध मोह का काम नहीं है,
नहीं दुःख है जन्म मरण का।
मस्ती जात उतर मद की सब,
जोर नहीं फिर लालच का।।
माया है जगदम्बा दिखती,
देह दिखे जनु मन्दिर उसका।
आत्म तत्व के आश्रित रहकर,
दिखे चलाती क्रम वह जग का।।
राम कहो चाहे कृष्ण कहो,
है अन्तर केवल नामों का।
रमे हुए हैं सब के अन्दर,
पहिने चोला पंच तत्व का।।

निष्कपट व्यवहार

तुम्हारा याही तन में वास।
खुल गई आँखे मेरी अब तो,
दीखन लगा प्रकास ।। तुम्हारा
दूर करन को भीतर का तम,
दीपक दीया चास ।
मीठे अब तक के रस फीके,
आई अबहिं मिठास ।। तुम्हारा
सोची थी मन मैंने अपने,
तुम तो बसत अकास ।
ऊपर चढ़ने नाहिं नसैनी,
कैसे करूं तपास ।। तुम्हारा
पूछत फिरता था मैं घर घर,
कहते करो प्रयास ।
मिलना चाहो उनसे जो यदि,
ये ये करो उपास।। तुम्हारा
मानी बातें मैंने सबही,
मन में बड़ा हुलास।
करते करते पालन उनका,
बँधती थी नहिं आस।। तुम्हारा
छोड़त छल बल अपने सारे,
होन लगे तुम भास ।
हामी भरता है 'नारायण'
उनका ही लघुदास ।। तुम्हारा

सत्य पथ

सत्य अकेला आत्म तत्व ही, करने को सत्संग।
सदा रहत अविकारी है वह, चढ़े न उस पर रंग।।

सब साधन से उत्तम साधन, साधन का यह ढंग।
बिना विघन के होता पूरन, कभी नहीं रस भंग।।

निर्मल होता चित्त उसी का, मानो जल है गंग।
प्रेम दिवाना होता वो ही, जैसे दीप पतंग।।

रहती नाहीं सुध भी नेकहु, चाहे काटो अंग।
बन जाती है देही ऐसी, लगे न जिसमें जंग।।

लगते उसको बन्धू जैसे, अंधे और अपंग।
ज्यों ज्यों करता सेवा उनकी, त्यों त्यों होत उछंग।।

अपना तुपना छोड़ 'नारायण' रस्ता है यह तंग।
विस्तृत पथ है आत्म तत्व का, चलतंहि आय उमंग।।

राम सदन

काम क्रोध मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ।।
सब के प्रिय सब के हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।
तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।
जननी सम जानहिं परनारी ।
धनु पराव बिषतें विष भारी ।।
जे हरषहिं पर संपति देखी।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ।।
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे ।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ।।
स्वामि सखा पितु मातु गुरू, जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ।।

भजन

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो ,
यह जीवन निरर्थक जाने न पाये।
यह मन न जाने क्या क्या दिखाये,
न बन सका कुछ मेरे बनाये।। हे नाथ.
संसार में ही आसक्त रह कर,
दिन रात अपने मतलब की कह कर।
सुख के लिये लाखों दुःख सहकर,
ये दिन जिन्दगी के यूँ ही बिताये। हे नाथ.
ऐसा जगादो फिर सो न जाऊँ,
अपने को निष्काम प्रेमी बनाऊँ।
मैं आपको चाहूँ और पाऊँ,
संसार का कुछ भय न रह जाये।। हे नाथ.
वह योग्यता दो शुभ कर्म कर लूँ,
अपने हृदय में सद्भाव भर लूँ।
नर तन है साधन भव–सिंधु तर लूँ,
ऐसा समय फिर आये न आये।। हे नाथ.
भगवन् हमें निरभिमानी बना दो,
दारिद्र हरलो दानी बना दो।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो,
दासी यही है आशा लगाये।। हे नाथ.

भजन

जीवन का मैंने सोंप दिया,
सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उद्धार पतन अब मेरा है ,
सरकार तुम्हारे हाथों में।
हम तुमको कभी नहीं भजते,
फिर भी तुम हमें नहीं तजते।
अपकार हमारे हाथों में,
उपकार तुम्हारे हाथों में ।
हममें तुममें है भेद यही,
हम नर है तुम नारायणं हो ।
हम हैं संसार के हाथो में,
संसार तुम्हारे हाथों में।
कल्पना बनाया करती है ,
इक सेतु विरह के सागर पर।
जिससे हम पहुँचा करते हैं ,
उस पार तुम्हारे हाथों में।
दृग 'बिन्दु' कह रहे है भगवन् ,
दृग नाव विरह के सागर में।
मझधार हमारे हाथों में ,
पतवार तुम्हारे हाथों में।

भजन

फिर मत कहना कुछ कर न सके।। टेक।।
जब नर तन तुम्हें निरोग मिला ,
और सत्संगति का योग मिला ।
फिर भी प्रभु कृपा अनुभव करके,
यदि भवसागर तुम तर न सके।। फिर मत कहना.
तुम सत्य तत्व ज्ञानी होकर,
तुम सद्धर्मी दानी होकर।
तुम सरल निरभिमानी होकर,
कामना विमुक्त विचर न सके।। फिर मत कहना.
जग में जो कुछ भी पाओगे ।
सब यहीं छोड़कर जाओगे।
पछताओगे यदि तुम अपना,
पुण्यों से जीवन भर न सकें।। फिर मत कहना.
जब अन्त समय आजायेगा ,
तब क्या तुमसे बन पायेगा ।
यदि समय शक्ति के रहते ही ,
प्रभु के चरणो में लग न सकें ।। फिर मत कहना.
तब तक होता न सफल जीवन ,
है भार रूप सब तन, मन, धन।
यदि पथिक प्रेम–पथ में चलकर,
अपना अरू पर दुःख हर न सकें।। फिर मत कहना.

सत्संग के अन्त में कहने को–

व्याप रही सत्ता हितकारी, शुद्ध सच्चिदानन्द तुम्हारी। व्याप.
सूर्य चन्द्र नक्षत्र सितारे,
हैं स्थित तव शक्ति सहारे,
चन्दन आदि सुगंधित तरूवर, फूलें फलें बनस्पति सारी। व्याप.
सातों सागर का जल लेकर,
बरसाते घन मधुर बनाकर,
अन्नादि से सृष्टि चलाते, जीवन दाता संकटहारी। व्याप.
निमित्त बनाया प्राणशक्ति को,
सेवक रक्खा अहंकार को,
सब के भीतर बैठे–बैठे, बोल रहे हैं वाणी प्यारी। व्याप.
प्रेरक बन सत्संग कराते,
सुने हुए को चित ठहराते,
क्षण–क्षण में आनन्द दिलाते, स्वयं सदा रहते अविकारी।व्याप.
दिखें नहीं अनुभव में आते,
भक्तों को निज धर्म सिखाते,
सुख–दुख से ऊपर उठवाते, विश्व गुरू हे विश्व पुजारी।व्याप.

शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

आरती

आरती लीजै अज अविनाशी,
पूरण परमानन्द प्रकाशी।
नभ अरु धरणी आरती थाला,
चन्द्र सूर्य दोऊ दीप उजाला,
अगर चन्दन सब धूप बिराजै,
झूला मेरु चँवर तरु राशी (आरती.)
फूल वनस्पति है सारी,
सातों सागर जल की झारी,
गगन अनहद बाजे बाजें,
गाजै राग डरे यम पाशी (आरती.)
चार प्रकार के अन्न गोपाला,
सोई तेरी भोग रसाला,
लोक चतुर्दश मन्दिर तेरो,
घट-घट आसन स्वयं विकासी (आरती.)
महावाक्य वेदन के जो हैं,
सो तेरो चरणामृत सोहैं,
गुरु पुजारी दे चरणामृत,
पियें नारि-नर बन्ध विनाशी (आरती.)

ॐ पूर्णमदः पूर्णभिदम, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रकाशक-

नारायण आध्यात्मिक ट्रष्ट

सरक्यूलर रोड, शिवपुरी

9584839311, 9406982106

मुद्रक- मुकेश प्रिंटिग प्रेस, शिवपुरी - 9407230499